इकाई 13 उत्तर वैदिक युग में परिवर्तन

इकाई की रूपरेखा

13.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने पर आप यह जान पाएंगे कि:

- उत्तर वैदिक समाज के अध्ययन के लिये कौन-कौन से स्रोत उपलब्ध हैं,
- उत्तर वैदिक काल की सामाजिक राजनैतिक, आर्थिक एवं धार्मिक व्यवस्था में किस प्रकार परिवर्तन हुए, और
- नव धातु या लोहे के प्रचलन से तकनीकी परिवर्तन के आर्थिक एवं सामाजिक आयाम क्या थे?

13.1 प्रस्तावना

आप जिस समय का अध्ययन करने जा रहे हैं वह 1000 ई. पू. से 600 ई.पू. के मध्य का समय है। इस युग में वैदिक कबीले "सप्र सिन्धव" क्षेत्र में गंगा की उपरी घाटी तथा उसके आस-पास के क्षेत्र में फैल गये थे। क्षेत्रीय परिवर्तन के इस काल में आर्यों की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक तथा धार्मिक व्यवस्था में कई परिवर्तन आये। इस इकाई में हम इन परिवर्तनों के महत्वपूर्ण बिन्दुओं की चर्चा करेंगे।

13.2 स्रोत

इस युग का अध्ययन करने के लिये हमारे पास साहित्यिक तथा पुरातात्विक दोनों ही प्रकार के स्रोत उपलब्ध हैं।

13.2.1 साहित्यिक स्रोत

ऋग्वेद संहिता में बाद में जोड़े गये 10 मंडल तथा साम, यजुर एवं अथर्वेद संहिता इस काल के मुख्य साहित्यिक स्रोत हैं। सामवेद संहिता प्रार्थना तथा श्लोकों की पुस्तक है जो ऋग्वेद से है। इनको उपासना एवं धार्मिक अनुष्ठानों के अवसरों पर स्पष्ट तथा लयबद्ध गाने के लिये संकलित किया गया।

- यजुर्वेद यज्ञ संबंधी अनुष्ठानों को स्पष्ट करता है और इसमें स्तुतिगीतों का भी संग्रह है। इस संहिता में संकलित अनुष्ठानिक एवं स्तुतिगीत उस युग की सामाजिक और राजनीतिक स्थिति पर भी प्रकाश डालते हैं।
- अथर्वेद उस काल की लोक परम्पराओं का संकलन है तथा वह लोकप्रिय धर्म का प्रतिनिधित्व करता है। सामान्य जनता की सामाजिक एवं धार्मिक परिस्थितियों को जानने का यह एक अच्छा उत्तर वैदिक कालीन स्रोत है।

इन ग्रंथों के बाद कुछ अन्य ग्रंथ सामने आते हैं। इन ग्रंथों को हम ब्राह्मण ग्रंथ कहते हैं। ब्राह्मण ग्रंथ वैदिक संहिताओं पर टीका टिप्पणियां हैं। यह अनुष्ठानों के सामाजिक एवं धार्मिक पक्षों को भी उजागर करते हैं और उनसे उत्तर वैदिक समाज की भी जानकारी मिलती है।

संस्कृत में लिखे गये रामायण तथा महाभारत दोनों महाकाव्यों में प्रारम्भिक भारतीय समाज के बारे में काफी जानकारी मिलती है। तब भी भारतीय इतिहास के किसी भी काल को महाकाव्यों का काल कहना बहुत उपयुक्त नहीं होगा। इतिहासकारों का मत है कि इन महाकाव्यों में जो जानकारी मिलती है वह अधिकांशतया उत्तर वैदिक काल से संबंधित है। इस काल का प्रमुख केन्द्र बिन्दु ऊपरी गंगा और मध्य गंगा घाटियाँ हैं। थोड़ा बहुत अन्य क्षेत्रों का भी विवरण है। महाकाव्यों के अनुसार भी अधिकांश महत्वपूर्ण घटनायें इसी क्षेत्र में घटी। हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इन महाकाव्यों में जिन कहानियों का वर्णन है उनको ऐतिहासिक घटनायें मानने का हमारे पास कोई सबूत नहीं है। साथ ही यह जानना भी जरूरी है कि इन महाकाव्यों को अपने वर्तमान रूप में पहुँचने में कई सौ साल लग गये इसलिये इन महाकाव्यों में विभिन्न प्रकार के समाजों के दर्शन होते हैं।

13.2.2 पुरातात्विक स्रोत

साहित्यिक स्रोत स्थान-स्थान पर पश्चिमी उत्तर प्रदेश, हरियाणा और राजस्थान के क्षेत्रों की चर्चा करते हैं। उत्तर वैदिक काल का समय लगभग 1000 ई. पू. से 600 ई. पू. तक का है। समकालीन ग्रंथों में बहुत से समुदायों तथा सांस्कृतिक समूहों के बारे में जानकारी मिलती है। परन्तु विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन किसी विशेष प्रजाति अथवा समूह से सम्बद्ध नहीं किये जा सकते। इसी क्षेत्र में लगभग इसी काल में कुछ खेतिहर समूह भी फले-फूले। ये खेतिहर समूह एक विशेष प्रकार के मिट्टी के बर्तन प्रयोग करते थे जिन्हें रंगे हुए धूसर मृदभाण्ड (PGW) कहा जाता है। यह बर्तन और अन्य पुरातात्विक अवशेष उत्तर वैदिक काल की भौतिक परिस्थितियों पर प्रकाश डालते हैं।

अब तक ऊपरी गंगाघाटी में 700 से अधिक चित्रित धूसर मृदंभांड के स्थलों की खुदाई की गई है ये बाहवलपुर, धामर नदी के सूखे क्षेत्रों, सिन्धु व गंगा के तराई वाले क्षेत्रों तथा गंगा यमुना दोआब में फैले हुए हैं। इन स्थलों की पूर्वी सीमा गंगा के उत्तरी पश्चिमी मैदान तथा सरस्वती नदी (जो अब राजस्थान के मरुस्थल में विलीन हो चुकी है) तक फैली है। अतरंजीखेड़ा, अछिछत्र, नूह, हस्तिनापुर, कुरुक्षेत्र, भगवानपुर, तथा जखेड़ा चित्रित धूसर मृद्भांड संस्कृति के मुख्य स्थल हैं।

2000 ई. पू. से 1400 ई. पू. की दक्षिणी राजस्थान की बांस संस्कृति का विस्तार संभवतः गंगा घाटी में 800 ई. पू. तक हो चुका था। इस तरह काले एवं लाल मृद्भांडों का प्रयोग करने वाले लोगों को भी उत्तर वैदिक संस्कृति के साथ जोड़ा जा सकता है वैदिक साहित्य के अनुसार आर्यों का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ परन्तु पुरातात्विक स्रोत "वैदिक आर्यों" के पूर्व दिशा में फैलने को सिद्ध नहीं करते। पुरातात्विक साक्ष्य, पूर्व दिशा में फैलने वाली किसी भी संस्कृति के साक्ष्य नहीं हैं। इस प्रकार साहित्यिक व पुरातात्विक ऐतिहासिक स्रोतों में एक बड़ी दूरी दिखाई पड़ती है। हालांकि साहित्यिक स्रोतों से इंगित उत्तर वैदिक समाज और पुरातात्विक साक्ष्यों से इंगित समाज दोनों में लोहे के प्रयोग का आरम्भ पता चलता है।

चित्रित धूसर मृदभांड क्षेत्रों में लोहे की चीजें सामान्यता प्रचलित थी। अतरंजीखेड़ा, नूह एवं जोधपुर से प्राप्त वस्तुओं की कार्बन 14 की पद्धति से निकाली गई तिथियाँ बताती हैं कि इस धातु का गंगा के मैदानों में 1000 ई. पू. से 800 ई. पू. के बीच प्रचलन शुरू हो गया था। लोहे को उत्तर प्रदेश, हिमाचल, पंजाब तथा बाद में दक्षिण बिहार से इकट्ठा किया जाने लगा। ऋग्वेद में वर्णित आयस शब्द लोहे के अर्थ में हो सकता है परन्तु पुरातात्विक खोजों के आधार पर लोहे का प्रयोग उत्तर वैदिक काल में मिलता है। साहित्यिक स्रोत इस की पुष्टि करते हैं। यजुर्वेद में "आयस" को "श्याम आयस" लिखा गया है तथा ब्राह्मण ग्रंथों में लोहे को "कृष्ण आयस" के नाम से पुकारा गया है।

किन्तु हाल ही के उत्खनन से पता लगता है कि दक्षिण भारत के महापाषाणी लोग लोहे के प्रयोग से अच्छी तरह से परिचित थे। इसलिये अब हम प्रवासी आर्यों को भारत में लोहे का प्रयोग प्रारम्भ करने का श्रेय नहीं दे सकते।

13.3 लौह तकनीकी तथा इसका प्रभाव

यहाँ पर प्रश्न यह उठता है क्या लोहे की जानकारी ने इस समय की धातु तकनीकी में कोई विकास किया? इसी प्रकार आप यह भी जानना चाहेंगे कि नई तकनीकी के प्रचलन से समाज की भौतिक परिस्थितियों में किस प्रकार के परिवर्तन हुए?

उत्तर वैदिक काल के ऐतिहासिक साक्ष्यों से यह धारणा बनती है कि घुमक्कड़ पशुपालक समाज एक स्थायी समाज में परिवर्तित हो रहा था। यह पहले भी बताया जा चुका है कि स्थायी रूप से खेती करने के लिये वनों एवं गंगा के दोआब को साफ करने के लिये लोहे की कुल्हाड़ी का प्रयोग किया गया। ऐसा समझा जाता है कि लोहे के नोक वाले हल एवं कुदाल ने कृषि यन्त्रों की क्षमता को बढ़ाया जिससे कृषि के कार्यों का फैलाब हुआ। इसलिये विद्वानों का मत है कि लोहे के प्रयोग ने कृषि अर्थव्यवस्था को और विकसित करने में विशेष योगदान दिया। फिर भी, इस तथ्य से हम भली प्रकार परिचित हैं कि उत्तर वैदिक काल कृषि तथा लोहे के प्रयोग में पूर्णतः विकसित नहीं था। बिहार से लोहे के खनन का कार्य बड़े स्तर पर नहीं किया जाता था तथा लोहा पिघलाने की विधि भी अति प्राचीन थी।

खुदाई से जो चीजें उपलब्ध हुई हैं उनमें मुख्य रूप से नुकीले लोहे के तीर, नुकीले भाले आदि हथियार हैं, इन में अधिक चीजें अहिच्छत्र की खुदाई से प्राप्त हुई हैं। उत्खनन से हंसिया, कुदाल व कुल्हाड़ी बहुत कम संख्या में प्राप्त हुई हैं। जखेड़ा से हल का एक फाल प्राप्त हुआ है जो शायद इस युग के अंत का है। इस प्रकार उत्खनन से ऐसा लगता है कि लोहे का प्रयोग केवल हथियार बनाने तक ही सीमित था। लोहे के प्रयोग ने पहली सहस्राब्दी ई.पू. के उत्तरार्ध तक कृषि तकनीकी को तब तक प्रभावित नहीं किया जब तक गंगा घाटी की दलदली तथा अन्य वनों को खेती के लिये साफ नहीं कर लिया गया। उत्तर वैदिक काल में गंगा दोआब के ऊपरी जंगलों को जलाकर साफ किया गया। महाभारत में वर्णित है कि खांडव नाम के जंगल को जलाकर इन्द्रप्रस्थ नगर को बसाया गया था। लोहे के नुकीले हथियारों तथा घोड़े वाले रथों ने सैनिक कार्यों में मुख्य भूमिका अदा की एवं इस युग में सैनिक कार्यों में इनका खूब प्रयोग होने लगा था जिसकी चर्चा महाभारत में विस्तृत

रूप से हुई है। लेकिन जीविकोपार्जन के कार्यों में लोहे का विशेष प्रयोग शुरू नहीं हुआ था।

बोध प्रश्न 1

1 सही वाक्य पर (✓) का निशान लगाओ:
   i) हम निश्चित तौर पर कह सकते हैं कि वैदिक समाज का फैलाव पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   ii) यह कहना असम्भव है कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   iii) हम अनुमान कर सकते हैं कि वैदिक समाज का प्रसार पूर्व दिशा की ओर हुआ। ( )
   iv) उपरोक्त में कोई भी नहीं। ( )

2 अथर्वेद के द्वारा :
   i) हम उत्तर वैदिक काल की लोक परम्परों को समझ सकते हैं। ( )
   ii) हम उत्तर वैदिक काल की अभिजात वर्ग की परम्पराओं को समझ सकते हैं। ( )
   iii) हम सामान्य जनता की सामाजिक व धार्मिक परिस्थितियों को जान सकते हैं। ( )
   iv) दोनों (i) और (iii) ( )

3 उत्तर वैदिक काल में :
   i) लोहे का मुख्य रूप से कृषि के लिये प्रयोग किया गया। ( )
   ii) लोहे का मुख्य रूप से युद्ध के हथियारों के लिये प्रयोग किया गया। ( )
   iii) लौह तकनीकी वहां पर बिल्कुल नहीं थी। ( )
   iv) स्टील का प्रयोग किया जाता था। ( )

4 उत्तर वैदिक काल में लोहे के प्रयोग के प्रभाव पर 50 शब्द लिखें :

....

....

....

....

....

....

13.4 अर्थव्यवस्था

गंगा यमुना दोआब एवं मध्य गंगा घाटी में उर्वरक भूमि के विशाल मैदानों की उपलब्धता से उत्तर वैदिक काल में कृषि का विकास सम्भव हुआ तथा इस क्षेत्र में प्रथम शताब्दी ई.पू. में, धीरे-धीरे स्थायित्व कायम हो सका। उत्तर वैदिक साहित्य में ऐसे संकेत मिलते हैं कि पशुपालन का महत्व बना रहा। इसी के साथ-साथ कृषि पर आधारित स्थायी जीवन प्रणाली का भी प्रारम्भ हो चुका था। दोनों तरह के साहित्यिक व पुरातात्विक स्रोत यह बताते हैं कि लोग खाने में चावल का प्रयोग करने लगे थे। चित्रित धूसर मृदभांड तथा बांस संस्कृति के खुदाई किये गये स्थलों से चावल के काले पड़े हुए दाने मिले हैं। वैदिक साहित्य में चावल के लिये ब्रीही, तन्दूला तथा सलि जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है यह लगता है कि इस समय फसल चक्र का प्रयोग होने लगा था तथा जौं व चावल की खेती की जाने लगी थी। इस काल में खेती की अच्छी पैदावार तथा आर्थिक सम्पन्नता के लिये राजसुय यज्ञ में दूध, घी व पशुओं के साथ-साथ अनाज भी चढ़ाया जाने लगा। अथर्वेद में ऐसी 12 बलियों का वर्णन है

जिससे कि भौतिक लाभ की प्राप्ति होती थी तथा इसी के साथ ब्राह्मणों को गाय, बछड़े, सांड, सोना, पके चावल, छप्पर वाले घर तथा अच्छी पैदावार देने वाले खेतों को उपहार के रूप में दिया जाने लगा। उपहार में दी जाने वाली ये वस्तुएं इस तथ्य का स्पष्ट प्रमाण है कि कृषि तथा कृषि पर आधारित स्थायी जीवन का महत्व बढ़ रहा था। उत्तर वैदिक काल के साहित्य में वर्णन है कि 8, 12, व 20 बैल तक हल को जोतते थे। यहाँ पर बैलों की संख्या का वर्णन प्रतीक के रूप में हुआ है। परन्तु इस सन्दर्भ से यह स्पष्ट है कि खेती करने के लिये हल बैल का प्रयोग खूब होने लगा था।

13.4.1 पशुपालक जीवन के महत्व में कमी

पशुपालन का कार्य अब जीवन यापन का मुख्य साधन नहीं था जैसा कि यह प्रारम्भिक वैदिक काल में था। इस काल में मिश्रित कृषि व्यवस्था का प्रचलन था जिसमें खेती तथा पशुपालन दोनों का संयुक्त रूप से प्रयोग था। कृषि श्रम प्रधान नहीं थी। जिन जगहों की खुदाई से चावल प्राप्त हुआ है वे स्थान दोआब के पूर्वक क्षेत्रों में स्थित हैं। रोपाई के द्वारा धान पैदा करने का तरीका अभी शुरू नहीं हुआ था।

मिश्रित कृषि व्यवस्था के कारण खेती पर आधारित स्थायी जीवन का उदय हुआ। धूसर मृद्भांड संस्कृतिक अवशेष 2 से 3 मीटर की गहराई पर हैं जिससे यह पता लगता है कि लोग एक ही स्थान पर लम्बे समय तक रहते थे। भगवानपुर तथा जखेड़ा की खुदाइयों से स्पष्ट हैं कि टहनियों, दूब व लकड़ी से बनी गोल झोंपड़ियों का स्थान मिट्टी के परकोटे से बने अधिक टिकाऊ घरों ने ले लिया था इन टिकाऊ घरों के बनाने में प्रयोग की गई सामग्री से स्पष्ट है कि अब उत्तर वैदिक काल के लोग कृषि पर आधारित स्थायी जीवन शैली को अपना रहे थे।

13.4.2 अनुष्ठानों में परिवर्तन

प्रारम्भिक वैदिक काल में पूर्ण समुदाय को लाभ पहुँचाने के लिये अनुष्ठान किये जाते थे, देवताओं की पूजा दूसरे समुदायों पर विजय पाने, पशु प्राप्त करने अथवा पुत्र लाभ के लिये की जाती थी। यह अनुष्ठान और पूजा ऐसे अवसर होते थे जब मुखिया या समुदाय के प्रमुख धन भी बांटते थे। उत्तर वैदिक काल में अनुष्ठानों का उद्देश्य बिलकुल बदल गया। अब अनुष्ठान बहुत जटिल हो गये जो कई सालों तक चलते रहते थे। इसलिये अब केवल धनी लोग यह अनुष्ठान कर सकते थे। सामूहिकता की भावना में कमी आ गई बलि देने के पीछे प्रमुख उद्देश्य समुदाय पर नियंत्रण प्राप्त करना हो गया। अब पूरे समुदाय को उपहार नहीं दिये जाते थे। मुखिया केवल ब्राह्मणों को उपहार देता था जो उसके लिये हवन अथवा बलि आदि के अनुष्ठान करते थे। अनुष्ठान अत्यधिक जटिल हो गये केवल अत्यन्त निपुण ब्राह्मण ही उन्हें कर सकते थे। क्योंकि ऐसा विश्वास था कि एक मामूली गलती भी अनुष्ठान करने वाले का विनाश कर देगी। ऐसा भी विश्वास था कि बलि देने से मुखिया या समुदाय के प्रमुख महामानव ही शक्ति प्राप्त कर के समुदाय में उच्च स्थान प्राप्त करते हैं। इस कार्य के लिये मुखिया अपनी साधन सम्पत्ति का एक बड़ा भाग ब्राह्मण पुरोहित को देता था। इस प्रकार अनुष्ठान मुखिया के लिये भौतिक और आध्यात्मिक प्रभुत्ता स्थापित करने का साधन बन गये।

13.4.3 भूमि का बढ़ता महत्व

जमीन की जुताई पारिवारिक श्रम तथा घरेलू नौकरों और दासों की मदद से की जाती थी। इस युग में, पहले भूमि का स्वामित्व पूरे समुदाय या विश के पास होता था परन्तु धीरे-धीरे भूमि पर परिवार का स्वामित्व हुआ इससे परिवार का प्रमुख या गृहपति धनी हो गया। वैश्य (जो मूलतः विश से बना था) समाज में उत्पादक वर्ग था। क्षत्रिय तथा ब्राह्मण उत्पादन के कार्यों में सीधी हिस्सेदारी नहीं लेते थे और इनके जीवन यापन के लिये खाद्यानों व सम्पत्ति का उत्पादन वैश्य ही करते थे। वैश्य जो भूमिकर या अन्य खाद्य सामग्री क्षत्रियों को देते थे उसके बदले में क्षत्रिय उनकी भूमि की रक्षा करते थे। ब्राह्मणों को वैश्य जो दान दक्षिणा देते थे उसके बदले में ब्राह्मण उनके जीवन में नैतिक उत्थान के लिये कार्य करते थे। विश-वैश्य इस घरेलू अर्थव्यवस्था के मुख्य आधार थे। जीवन निर्वाह

करने वाले खाद्य पदार्थ क्षत्रिय व ब्राह्मणों के बीच क्रमशः भूमिकर और दान दक्षिणा में बंट जाते थे। भूमि को बेचने या क्रय करने की कोई प्रथा नहीं थी। पृथ्वी द्वारा भवाना विश्वकर्मा नाम के एक शासक की इस बात के लिये निंदा की गई कि उसने भूमि का अनुदान देने की कोशिश की। इस संदर्भ से यह स्पष्ट है कि भूमि पर सामुदायिक स्वामित्व का सिद्धांत माना जाता था तथा विश की भी भूमि में भागीदारी थी।

13.5 राजनीति और समाज

पशुपालन से मिश्रित कृषि की ओर संक्रमण का उत्तर वैदिक राजनीति तथा समाज के चरित्र पर व्यापक प्रभाव पड़ा। परिवर्तन की मुख्य धारायें थीं—

- प्रारम्भिक वैदिक समाज की काबीलाई संस्था का स्थान क्षेत्रीय पहचान ने ले लिया तथा इसके फलस्वरूप मुखिया की प्रकृति में भी परिवर्तन हुआ।
- सामाजिक ढांचा जो प्रारम्भिक वैदिक काल में कबीलाई सबंधों पर आधारित समानतावादी था अब काफी जटिल हो गया यह समाज असमानता पर आधारित था एक कबीला कई समूहों में बंट गया समाज में कुछ समूह उच्च समझे जाते थे ओर कुछ निम्न।

13.5.1 राजनीति

ऋग्वैदिक काल में जन का प्रयोग जनता या कबीले के लिये किया जाता था। लेकिन अब जनपद का प्रयोग अस्तित्व में आया जनपद का तात्पर्य उस स्थान से था जहाँ पर कबीला बस गया था। उतर वैदिक काल के साहित्य में "राष्ट्र" शब्द का प्रयोग होने लगा था परन्तु इस शब्द को अभी तक उस अर्थ में परिभाषित नहीं किया गया था जिससे यह एक निश्चित, क्षेत्र का घोतक हो।

कौरव (कुरु) कबीले का उदय वैदिक काल के दो बड़े कबीलों भरत तथा पुरु के संयुक्त होने पर हुआ था इनका अधिकार गंगा/यमुना दोआब के ऊपरी भू-भाग पर था इसी प्रकार पांचाल कबीला उन लोगों को कहा गया जिनका अधिकतर प्रभाव दोआब के मध्य भू-भाग पर था और "पांचाल देश" के नाम से जाना जाता था। इन दोनों उदाहरणों से स्पष्ट है कि अब कबीले की पहचान क्षेत्रीय पहचान में बदल गई थी यह भी कहा जाता है कि कुरु तथा पांचाल कबीलों का एक दूसरे में विलय हो जाने के कारण उनका अधिकार गंगा-यमुना दोआब के ऊपरी तथा मध्य भू-भाग पर हो गया था। इस प्रकार "जन" तथा क्षेत्र के सम्बन्धों में परिवर्तन और क्षेत्र के नियंत्रण ने छठी शताब्दि ई. पू. तक महाजनपद तथा जनपद के गठन में सहायता की।

कबीलों के मुखिया और योद्धा

जब कबीले किसी क्षेत्र विशेष से सम्बधिंत हो गये और उस क्षेत्र के रूप में जाने जाने लगे तो कबीलों के मुखिया के पद एवं कार्य शैली में भी परिवर्तन हुआ। राजा या मुखिया अब केवल पशुओं की लूट में सम्मिलित नहीं होता था बल्कि वह उस क्षेत्र का रक्षक बन गया था जिसमें उसके कबीले के लोग रहते थे। राजन्य जो ऋग्वैदिक काल से अभिजात्य समझा जाता था अब वह क्षेत्रीय वर्ग में बदल गया। "क्षत्रिय" शब्द का साहित्यिक अर्थ है राज्य या क्षेत्र पर अधिकार होना। क्षत्रिय वर्ग का मुख्य कार्य था अपने कबीले के लोगों तथा उस क्षेत्र की रक्षा करना जिसमें वे बस गये थे। विश या जनता को क्षत्रियों को एक कर देना होता था जिसके बदले में क्षत्रीय जनता की रक्षा करते थे और विश धीरे-धीरे क्षत्रिय वर्ग के सहायक बन गये। भूमिकर तथा बलि अब इच्छानुसार देने वाले उपहार नहीं थे बल्कि अब नियमित कर व नजराना देने वाली प्रथाओं का उदय हुआ।

कबीलाई सभाएं

क्षत्रिय तथा योद्धा वर्ग की स्थिति में परिवर्तन के कारण गण या कबिलाई सभाओं के चरित्र

में भी परिवर्तन हुआ। समिति की अपेक्षा सभायें इस समय अधिक शक्तिशाली हो गई।

सभा राजा को उसके कर्त्तव्य निर्वाह में सहायता करती थी राजा या मुख्यिा का पद जन्म पर आधारित नहीं था परन्तु राजा का चुनाव केवल क्षत्रिय वर्ग के मध्य से ही होता था।

राजा की वैधता

पैतृक उतराधिकार के स्पष्ट सिद्धांतों के अभाव में राजा के लिये राजतिलक के समय होने वाले अनुष्ठानों का महत्व और भी बढ़ गया था। इसी के माध्यम से वह अपने प्रभुत्व के लिये आम लोगों की सहमति प्राप्त करता था इसीलिये राजसूय, अश्वमेध तथा वाजपेय जैसे यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर किया जाने लगा था। ऋग्वैदिक काल में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन छोटे स्तर पर ही होता था। लेकिन इस काल में इसका आयोजन दूसरे स्थानों पर अधिकार करने तथा दूसरे स्थानों पर शासक की वैधता स्थापित करने के लिए किया जाता था। दूसरे यज्ञों द्वारा राजा के स्वस्थ होने की कामना की जाती थी और राजा की वैधता, उसकी संप्रभुता व शक्ति को स्थापित करने के लिये इन तीनों यज्ञों का आयोजन किया जाता था। उदाहरण के लिये राजसूय यज्ञ के बाद आयोजक राजा (सम्राट) घोषित किया जाता था। बाद के काल में भी जब नये राज्य या राजा बनते थे तब भी इनका महत्व बना रहा। राजाओं द्वारा इनका उपयोग अपनी सत्ता को धार्मिक वैधता प्रदान करने के लिये हुआ।

साधनों, आर्थिक उत्पादन एवं वितरण के द्वारा राजा क्षेत्रीय एकता को प्राप्त करता था जिससे कि उसका स्तर मात्र लुटेरे या केवल युद्धों के नेता से कुछ अधिक हो जाता था। तब भी, वह एक संम्प्रभुता सम्पन्न शासक नहीं था। उसका चुनाव होता था तथा वह अपने कबीले के प्रति उतरदायी था। वह दूसरे ऐसे राजाओं की नियुक्ति भी नहीं कर सकता था जो उसके कार्यों में उसकी सहायता करते वे स्वयं में अधिकार सम्पन्न मुखिया थे। यह काफी महत्वपूर्ण है कि इस समय में क्षत्रिय वंश का स्तर अधिक ऊंचा हो गया था, इसका कारण क्षेत्रीय पहचान के सिद्धांत की स्थापना है। इस प्रकार क्षेत्र के भौतिक आधार ने राजा को शासन करने की शक्ति दी।

कबीलाई संघर्ष

कबीले के आन्तरिक व बाह्य संघर्ष की प्रकृति में भी परिवर्तन हुए। अब लड़ाईयाँ पालतू पशुओं के छुटपुट झगड़े नहीं रह गई थी, बल्कि भूमि पर आधिपात्य स्थापित करना इन झगड़ों का मुख्य तत्व था। क्षेत्र को बढ़ाने की आवश्यकता का सम्बन्ध कबीले की बढ़ती हुई जनसंख्या से था। लोहे के हथियार और घोड़ों द्वारा चलने वाले रथों ने युद्धों के कौशल को बढ़ावा दिया। महाभारत में कबीले के आन्तरिक युद्ध को (कौरव और पांडव समुदायों के) दिखाया है।

पुरोहित

राजन्य क्षत्रिय के बढ़ते हुये महत्व ने ब्राह्मण के महत्व को भी बढ़ा दिया क्योंकि वे अनुष्ठानों द्वारा राजा के पद को वैधता प्रदान करते थे। ऐसे अवसर पर दान-दक्षिणा द्वारा धन सम्पत्ति का बाँटा जाना मुख्य रूप से क्षत्रिय यजमान द्वारा ब्राह्मण, पुरोहित को देना था बड़े स्तर पर पवित्र अनुष्ठान करना यह दिखाता है कि राजा अपने को पद पर बहुत सुरक्षित नहीं पाता था और शासन करने की अपनी योग्यता ऐसे अनुष्ठानों द्वारा दिखाना चाहता है। बाद के काल में राज्य के पुरोहित का दर्जा देवताओं के समतुल्य हो गया, यह समझा जाता था कि देवताओं को प्रसन्न करने के लिये यज्ञ की आवश्यकता है इसी प्रकार राज्य पुरोहित अथवा ब्राह्मण दान से प्रसन्न होता है। इस प्रकार धन सम्पति का बटवारा मुख्यता शासक और पुरोहित दो उच्च वर्गों में था और राजनैतिक शक्ति क्षत्रिय के अधिकार में आ रही थी।

13.5.2 समाज

हम विश या जन की घटती हुई स्थिति और क्षत्रिय की बढ़ती हुई हैसियत के बारे में पहले ही पढ़ चुके हैं। समाज की रचना अब असमानता पर आधारित थी। एक स्रोत के अनुसार चार वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र की उत्पत्ति ब्रह्माण्ड के रचयिता प्रजापति के शरीर से हुई। ''आदिकालीन मनुष्य का स्रोत'' नाम श्लोक ऋग्वेद के उत्तरार्द्ध

में है। यह श्लोक पहली बार चार वर्णों की उत्पत्ति के बारे में बताता है।
''जब मनुष्य को विभाजित किया गया उसे कितने भागों में बाँटा गया? उसका मुख क्या था, उसके हाथ क्या थे, उसकी जंघा क्या थी और उसके पाँव क्या कह गये?

ब्राह्मण उसका मुख था
क्षत्रिय उसके हाथ से बनाये गये
उसकी जंघा से वैश्य बने
उसके पाँव से शूद्र उत्पन्न हुये''

इन स्रोतों में प्रतीकात्मक रूप से यह दिखाया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र समाज के अंग हैं। हालांकि यह अंग समान स्तर के नहीं हैं। ब्राह्मण, की तुलना सिर या मुख से की गई है तबकि शूद्र की तुलना पाँव से। ब्राह्मण सर्वोच्च समझे गये क्योंकि ऐसा माना गया कि समाज देवताओं से सम्पर्क केवल उनके द्वारा ही स्थापित कर सकता था जब कि शूद्र निम्न कार्य करता था और इस श्रेणी में वह दास भी रखे गये जो युद्ध में पकड़े जाते थे।

वर्ण की अवधारणा

वर्ण की अवधारणा की निम्नलिखित विशेषतायें हैं:

क) जन्म के आधार पर सामाजिक स्तर।
ख) वर्णों का श्रेणीबद्ध तरीके से गठन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र) जिसमें ब्राह्मण समाज में सबसे उच्च और शूद्र सबसे निम्न स्थान पर थे।
ग) सगोत्र विवाह एवं अनुष्ठानों की पवित्रता के नियम।

वर्ण व्यवस्था को आगे धर्म से या सार्वभौमिक नियम की अवधारणा से प्रतिबद्ध किया गया है और वर्ण धर्म की स्थापना सामाजिक नियम रूप में इसलिये की गई जिससे कि समाज को व्यवस्थित ढंग से चलाया जा सके। लेकिन उत्तर वैदिक समाज में वर्ण धर्म का पूर्णतः विकास नहीं हो पाया था।

इस समय में समाज का विभाजन व्यवसाय के आधार पर था और समाज में अभी काफी लचीलापन था जिसमें किसी का व्यवसाय जन्म पर आधारित नहीं होता था।

वैदिक काल के बाद के काल में भी वर्ण धर्म प्रत्येक समूह के अनुष्ठानिक महत्व मात्र की ओर संकेत करता था। वर्ण व्यवस्था में गैर क्षत्रिय लोग भी क्षत्रिय हो सकते थे और शासक भी (उदाहरण के लिये नंद और मौर्य) न ही ब्राह्मणों को राजनैतिक सर्वोच्चता स्थापित करने से वंचित किया गया (जैसे कि शुंगराजा) (आप इसके विषय में खण्ड 5 में पढ़ेंगे)।

इस प्रकार वर्ण व्यवस्था के सिद्धांत को व्यवहारिक स्तर पर वैदिक काल के बाद भी कठोरता के साथ कभी भी लागू नहीं किया जा सका।

ऐसा समझा जाता है कि उत्तर वैदिक काल में भौगोलिक केन्द्र परिवर्तन के साथ वैदिक लोगों का सामना बहुत से गैर वैदिक कबीलों के साथ हुआ इनके साथ लम्बे आदान-प्रदान के बाद एक मिला-जुला समाज अस्तित्व में आया। कम से कम अथर्वेद में कई गैर वैदिक धार्मिक परम्पराओं का चित्रण है जिसे पुरोहितों द्वारा स्वीकार किया गया था। यहाँ पर विवाह के कठोर नियमों को लागू करने का उद्देश्य सगोत्र विवाह के द्वारा कबीले की पवित्रता को बनाये रखना था। क्षत्रियों तथा ब्राह्मणों का महत्व समाज में बढ़ जाने के कारण उनके लिये यह अनिवार्य हो गया कि अन्य लोगों की तुलना में वे स्पष्टतः अपनी सर्वोच्चता कायम रखें। उत्तर वैदिक काल में फिर भी वर्णों की अवधारणा अपनी प्रकृति में बनावटी थी। उदाहरणतः अस्पृश्यता की अवधारणा अनुपस्थित थी।

गोत्र

इस समय में गोत्र (साहित्यक अर्थ गौशाला) संस्था का भी उदय हुआ। कबीलाई सगोत्र विवाह (कबीले के अन्दर विवाह) के विरुद्ध लोग असगोत्रीय विवाह (कबीले के बाहर

विवाह) करते थे। गोत्र ने एक समान पूर्वज के वंशक्रम को महत्व दिया और इसी कारण एक ही गोत्र के लड़के लड़कियों का आपस में विवाह नहीं होता था।

परिवार

इस काल में पितृसतात्मक परिवार अच्छी प्रकार से स्थापित था तथा गृहपति को एक विशेष स्थान प्राप्त था। घरेलू अर्थव्यवस्था के विशिष्टता प्राप्त कर लेने से गृहपति की स्थिति महत्वपूर्ण हो गयी। भूमि पर स्वामित्व का अधिकार परम्परागत प्रयोग के आधार पर था तथा भूमि के सामुदायिक स्वामित्व को भी सुरक्षित रखा गया। गृहपति धनी थे और अनुष्ठान में उनका मुख्य कार्य यज्ञमान (जो बलि करने की आज्ञा देता हो) का था। उन्होंने धन उपहारों के द्वारा प्राप्त नहीं किया था। परन्तु उन्होंने इसको अपने विशेष प्रयासों से उत्पादित किया। यज्ञों का सम्पन्न कराना उनका कार्य था जिससे कि उनको विशेष दर्जा मिलता और उनके धन में से कुछ भाग ब्राह्मणों को भी जाता था। कुछ महिलाओं को दार्शनिक का दर्जा प्राप्त हुआ था तथा रानियाँ राजतिलक के अनुष्ठानों के अवसर पर पुरुषों के साथ उपस्थित रहती, फिर भी महिलाओं को पुरुषों का सहायक ही समझा जाता और नीति निर्धारण में उनका कोई योगदान नहीं होता था।

जीवन के तीन आधार

तीन आश्रम, अर्थात् जीवन को तीन भागों में विभाजित किया गया। यह निम्न प्रकार थे।

ब्रह्मचर्य (विद्यार्थी जीवन) : गृहस्थाश्रम (घरेलू जीवन), वान प्रस्थाश्रम (घरेलू जीवन का परित्याग कर के वन में निवास करना), संभवतः चतुर्थ, सन्यासी (अनिवार्य रूप से संसारिक जीवन को छोड़ देना) था जिसके विषय में हमें उपनिषदों के लिखने के समय तक कोई जानकारी नहीं मिलती। उत्तर वैदिक काल में सन्यासी या तपस्वी व्यक्तिगत रूप पर होते थे परन्तु इन्होंने वैदिक काल के बाद की सामाजिक व्यवस्था का सक्रिय या निष्क्रिय तरीके से विरोध किया।

बोध प्रश्न 2

1 निम्नलिखित में से सही कथन पर (✓) का निशान लगायें। उत्तर वैदिक काल में :
   i) पशुपालन जीवनयापन का मुख्य साधन कहा जा सकता है ( )
   ii) मिश्रित कृषि व्यवस्था जिसमें खेती तथा पशुपालन सम्मिलित थे, जीवन यापन का मुख्य साधन थी ( )
   iii) केवल श्रम प्रधान खेती की जाती थी ( )
   iv) उद्योग मुख्य कार्य था। ( )

2 उत्तर वैदिक काल में :
   i) संगठित समाज के लिये केवल कबीला ही आधार था ( )
   ii) भूमि अधिक महत्वपूर्ण हो गई तथा भूमि पर कबीलाई स्वामित्व धीरे-धीरे पारिवारिक स्वामित्व में परिवर्तित हो गया ( )
   iii) भूमि का स्वामित्व कबीले से बाहर था ( )
   iv) इनमें से कोई भी नहीं। ( )

3 उत्तर वैदिक काल में:
   i) समिति की अपेक्षा सभा अधिक महत्वपूर्ण हो गई ( )
   ii) समिति सभा से अधिक महत्वपूर्ण हो गई ( )
   iii) सभा तथा समिति दोनों के महत्व में गिरावट आई ( )
   iv) उपरोक्त से कोई भी नहीं। ( )

4 उत्तर वैदिक कालीन लोगों ने:
   i) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने शुरू किये ( )
   ii) अपने गोत्र से बाहर विवाह किये ( )
   iii) स्वयं अपने गोत्र के अंदर विवाह करने या न करने की परवाह नहीं की ( )
   iv) उपरोक्त में से कोई नहीं। ( )

5 उत्तर वैदिक काल में पारिवारिक जीवन क्या था? पचास शब्दों में उत्तर दें:

....

....

....

....

....

....

13.6 धर्म

इस समय के ग्रंथ दो विभिन्न धार्मिक परम्पराओं की ओर इशारा करते हैं :

- वैदिक जिसका वर्णन साम और यजुर्वेद संहिताओं तथा ब्राह्मण ग्रंथों में हुआ है, और
- गैर वैदिक या शायद लोक परम्परा जिसको विस्तृत रूप से अथर्वेद में संकलित किया गया।

वास्तव में, अथर्वेद में वर्णित धार्मिक परम्परा से साफ पता लगता है कि यह विभिन्न संस्कृतियों और वैदिक धार्मिक व्यवस्था में प्रचलित मान्यताओं का मिला जुला रूप है। यजुर्वेद संहिता और ब्राह्मण ग्रंथों में इस काल के बलिदान विषयक धर्म का संकलन है। इस युग में बलियों का बड़ा महत्व हो गया था तथा उन्होंने सार्वजनिक व व्यक्तिगत विशेषता प्राप्त भी कर ली। सार्वजनिक बलि अर्थात् राजसूय, वाजपेय व अश्वमेध यज्ञों का आयोजन विशाल स्तर पर होने लगा जिसमें पूरा समुदाय भाग लेता है। इन आहुति (बलि) यज्ञों के कुछ अनुष्ठानों में फलादत पूजा के तत्व भी दिखाई देते हैं। उदाहरणार्थ, अश्वमेध यज्ञ में इस बात की आवश्यकता होती थी कि पटरानी बलि के घोड़े के पास रहती थी यहाँ पर रानी पृथ्वी का प्रतीक मानी जाती थी और इस अनुष्ठान के विषय में ऐसा सोचा जाता था कि इससे राजा की सम्पन्नता बढ़ती थी। राजसूय एवं वाजपेय यज्ञों के समय अनेक कृषि अनुष्ठान किये जाते। पृथ्वी के नियमित रूप से तरुण व उर्वरक होने जैसे विषयों के लिये भी यज्ञों का आयोजन किया जाता था।

13.6.1 पुरोहितवाद

उत्तर वैदिक ग्रंथ अनुष्ठानों के सुसम्पादन को स्पष्ट करते हैं तथा जो जटिल थे उनको सम्पन्न करने के लिये ऐसे व्यवसायिक लोगों की आवश्यकता थी जो उनके आयोजनों की कला में निपुण हों। बलि यज्ञों को सम्पन्न करने के लिए विधि या नियमों को रचा गया वैदिक बलि यज्ञों का यह तात्पर्य नहीं था कि खाद्य सामग्री को अग्नि की भेंट चढ़ाकर साधारण तरीके से उनको सम्पन्न किया जा सके। भेंट चढ़ाने एवं बलि आदि देने के तरीकों में संरक्षक या यजमान की आवश्यकता के अनुसार अन्तर किया जाता। अब बलि यज्ञों को अदृश्य प्रतीक से सम्पन्न किया जाता और प्रत्येक अनुष्ठान को किसी अदृश्य शक्ति के द्वारा सम्पन्न किया जाने लगा। पुरोहितवाद की एक नयी पद्धति का उदय हुआ क्योंकि इन यज्ञों के सम्पादन में बहुत सी जटिलतायें आ गई थी फिर चाहे वह सार्वजनिक यज्ञ हो या व्यक्तिगत इस प्रकार यज्ञोपासना करने के लिये पुजारियों का एक वर्ग विशेषज्ञ हो गया। यहाँ तक कि एक ही यज्ञ के दौरान उसके विभिन्न चरण पूरे करने के लिये अलग-अलग पुरोहितों की आवश्यकता होती थी।

13.6.2 उत्तर वैदिक काल के देवता

प्रारम्भिक वैदिक काल के दो महत्वपूर्ण देवता इन्द्र तथा अग्नि का महत्व कम हो गया। प्रजापति या स्रष्टा अधिक महत्वपूर्ण हो गया। यह इस तथ्य का भी प्रतीक है कि कृषक

समाज में स्रष्टा की काल्पनिक रचनाओं का कितना महत्व है। रुद्र जो ऋग्वेद में एक छोटा देवता था, अब एक महत्वपूर्ण देवता हो गया तथा विष्णु को भी सृष्टि का रचयिता तथा रक्षक समझा जाने लगा। पूषण जो पहले पालतू पशुओं की रक्षा करता था अब शूद्रों का देवता हो गया। देवताओं की स्थिति में होने वाले परिवर्तन इस तथ्य के प्रतीक हैं कि घुमक्कड़ कबीलों के स्थायी रूप से बसने पर उनके चरित्र में भी किस प्रकार परिवर्तन हुआ। प्रारम्भिक वैदिक देवता जो प्राकृतिक विशेषताओं के प्रतीक थे इनके गुणों को धीरे-धीरे त्याग दिया गया और प्राकृतिक तत्वों को देवता के रूप में देखना जटिल हो गया। उत्तर वैदिक काल के श्लोकों में वर्णित होने वाले विशेष देवता में प्राकृतिक तत्व को ढूंढ पाना कोई सरल कार्य न था।

13.6.3 लोक परम्परा

अथर्वेद लोक परम्पराओं से सम्बन्धित सूचनाओं का विशाल भण्डार है इनका सार तत्व वैदिक बलि विषयक धर्म से अधिक उग्र है और यह मायावी धर्म से सम्बन्धित है इस वेद की विषय वस्तु मानव जीवन के प्रत्येक हिस्से का वर्णन करती है। इसके सुक्त निम्न बातों का वर्णन करते हैं :

- रोग का प्रतिकार
- स्वास्थ्य के लिये प्रार्थना
- घर तथा सन्तान की सम्पन्नता के लिये मन्त्र
- पालतू पशु और खेत
- सौहार्दता बनाने के लिये मन्त्र
- प्रेम और विवाह या बातचीत तक सीमित विरोध तथा ईर्ष्या आदि से सम्बन्धित मन्त्र।

इस प्रकार इसमें उस समय में व्याप्त अन्धविश्वास तथा विश्वासों का संकलन है। अथर्व शब्द एक मायावी सूत्र की ओर इशारा करता है और अथर्व पुरोहित इस धर्म की औपचारिकता पूरी करते थे। वैदिक देवतों की स्तुति की जाती थी लेकिन जिस कारण से उनकी स्तुति की जाती थी वे कारण बहुत छोटे तथा व्यक्तिगत होते थे। बहुत सारे देवता राक्षस, तथा पिशाच (कुछ अपकारी और परोपकारी) सब की स्तुति की जाती थी इसका उद्देश्य सौभाग्य प्राप्त करने एवं मित्रों का लाभ अथवा दुश्मनों का सर्वनाश करने के लिये होता था। बहुत से मन्त्र और स्तुतियां परिवार से सम्बंधित थी और आम आदमी के दैनिक जीवन के नजदीक थी। उदाहरण के लिये, इन्द्र को, घर को लूटने वालों, नागों तथा असुरों को मारने वाला कहा गया है। ऐसा विश्वास किया गया कि अस्विन कृषि रक्षा करते तथा चूहों को मारते। सावित्री को उस जगह पर रखा जाता था जहां पर नया घर बन सके। पूषण की पूजा सौहार्द प्राप्त करने तथा बच्चों के सुरक्षित जन्म के लिये जाती थी जबकि सूर्य भूत-प्रेत को भगाता था।

इस युग के अंत में ब्राह्मणों के विरुद्ध एक कड़ी प्रतिक्रिया हुई। यज्ञों में जटिलता आने का परिणाम यह हुआ कि दर्शन में एक नये सिद्धांत का प्रतिपादन हुआ जिसका मूर्तरूप उपनिषदों में दिखायी दिया इन्होंने अनुष्ठानिक कार्यक्रमों व बलि के रूप में किये जाने वाले निरर्थक खर्च का विरोध किया तथा आत्मिक ज्ञान पर बल दिया। इस प्रकार धर्म के भौतिक आधार का बहिष्कार कर दिया गया और धर्म को दर्शन विषय तक उठाया गया। उपनिषदों ने आत्म की परिवर्तन विहीनता एंव अमरत्व पर जोर दिया। इस प्रकार से वे राजनीतिक स्थिरता तथा एकता पर जोर देते दिखायी पड़ते हैं क्योंकि यह वह समय है जबकि जनपदों एवं महाजनपदों अर्थात् गणतन्त्र व राजशाही का उदय हो रहा था।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रारम्भिक वैदिक तथा उत्तर वैदिक काल के बीच में धार्मिक मतों तथा कार्यक्रमों में एक महान् परिवर्तन हो चुका था। यह परिवर्तन अंशतः पशुपालन से कृषि की ओर बदलाव से संबधित था। ये धार्मिक परिस्थितियां उस काल की उन बदलती हुई सामाजिक, राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थितियों का प्रतीक थे जो पूर्व वैदिक से उत्तर वैदिक काल में आये।

बोध प्रश्न 3

1 उत्तर वैदिक काल में : (निम्नलिखित में सही कथन पर (✓) का निशान लगाओ)।
   i) सार्वजनिक एवं घरेलू बलि यज्ञ बड़े महत्वपूर्ण हो गये ( )
   ii) बलि यज्ञ की कोई भूमिका नहीं थी ( )
   iii) बलि यज्ञों का महत्व हो गया क्योंकि पुरोहित एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाने को आ गये ( )
   iv) दोनों (i) और (iii) सही हैं ( )

2 यह कहा जा सकता है कि :
   i) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता एक समान थे ( )
   ii) महत्वपूर्ण उत्तर वैदिक एवं प्रारम्भिक वैदिक देवता अलग अलग थे ( )
   iii) घुमक्कड़ से स्थायी तौर पर बसने के साथ सामाजिक चरित्र में आये परिवर्तन का उत्तर वैदिक देवता मूर्तरूप थे ( )
   iv) दोनों (ii) और (iii) सही हैं ( )

3 उत्तर वैदिक काल के देवताओं की स्थिति में परिवर्तन क्या इंगित करते हैं (50 शब्दों में उत्तर दें)।

....

....

....

....

....

13.7 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आपने जाना :

- कि उत्तर वैदिक समाज पशुपालन शैली से एक स्थायी कृषि समाज में परिवर्तित हो रहा था परन्तु लोहा कृषि में एक महत्वपूर्ण भूमिका अदा नहीं कर सका था। लोहे के औजारों ने आगे चलकर ही इस क्षेत्र में भूमिका अदा की।
- कि इस प्रक्रिया में ठीक तरीके से परिभाषित राजनैतिक संस्था की स्थापना हुई, आचार संहिताओं को लिखा गया और एक विशेष सामाजिक विभाजन का उदय हुआ।
- कि वैदिक धर्म और इस काल की लोक परम्परा में, अपनी पहिचान बनाये रखते हुए भी, मेल-मिलाप बढ़ रहा था।
- कि इस परिवर्तन की प्रक्रिया में प्रारम्भिक वैदिक काल के रुद्र जैसे छोटे देवता अधिक महत्व पूर्ण हो गये जब कि पहले के महत्वपूर्ण इन्द्र जैसे देवताओं का महत्व कम हो गया, और
- इस युग के साहित्यिक एवं पुरातात्विक साक्ष्यों को एक साथ मिलाकर पढ़ना चाहिये जिससे कि उस समय के समाज का पूर्ण चित्र सामने आ सके।

13.8 शब्दावली

दोहरी फसल : एक ही खेत में एक समय दो या दो से अधिक फसल पैदा करना।

सगोत्र विवाह : एक ही कबीले, जाति व गोत्र आदि के अन्दर विवाह।

असगोत्र विवाह : जाति, गोत्र आदि से बाहर विवाह।

फलादत उत्सर्ण (पूजा) : अनुष्ठान/धार्मिक कार्य जिसमें मानव जन्म या जन्म की प्रक्रिया पर जोर दिया जाये।

भेंट अर्थव्यवस्था : ऐसी अर्थव्यवस्था जिसमें इसको तथा इसकी संस्थाओं को बनाये रखने में उपहार अथवा भेंट विशेष योगदान करते हों।

श्रम प्रधान : वह कार्य जिसमें तकनीकी के स्थान पर मानव श्रम अधिक योगदान करे।

स्थायी रूप से बसना : ठहराव या एक ही स्थान पर रहना।

विभाजन : तहों में विभाजन, सामाजिक विभाजन का तात्पर्य है कि समाज में धन, जाति आदि के आधार पर विभाजन होना।

जीवन यापन गतिविधि : आर्थिक रूप से जीवित रहने के लिये कार्य, इसमें मिश्रित खेती आती है।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1 (iv)
2 (iv)
3 (ii)
4 भाग 13.3 को देखें (आप अपने उत्तर में यह बतायें कि क्या लोहा युद्ध के लिये महत्वपूर्ण हो गया था या रोजमर्रा उपयोग के लिये और क्यों?)

बोध प्रश्न 2

1 (ii)
2 (ii)
3 (i)
4 (ii)
5 उपभाग 13.5.2 को देखें (आपको अपने उत्तर में परिवार के महत्व, गृहपति के महत्व तथा महिला की परिवार में स्थिति के बारे में बताना चाहिये)।

बोध प्रश्न 3

1 (iv)
2 (iv)
3 उपभाग 13.6.2 को देखें (आप अपने उत्तर में बतायें कि क्या नये देवता एक नये समाज की ओर इशारा करते थे?)।

इस खण्ड के लिये उपयोगी पुस्तकें

शिव शंकर मिश्र—**प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास।**

ए.एल. बाशम—**अदभुत भारत**

डी.डी. कोशांबी—**प्राचीन भारतीय संस्कृति और सभ्यता**

Allchin, Raymond and Bridget, *Rise of Civilization in India and Pakistan,* Delhi, 1983.